International Journal of Social Research and Development
www.socialsciencejournal.net
Online ISSN: 2664-8709, Print ISSN: 2664-8695
Received: 01-07-2024, Accepted: 01-08-2024, Published: 17-08-2024
Volume 6, Issue 2, 2024, Page No. 11-13

सुभाषचन्द्र बोस का सामाजिक–आर्थिक चिंतनः एक दृष्टिकोण

सुनील कुमार पाण्डेय
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, डी.बी.एस. कॉलेज, कानपुर, उतार प्रदेश, भारत

सारांश
भारत एक विचारशील एवं मूल्यों से परिपूर्ण संस्कृति का राष्ट्र रहा है। इसके अपने विकास की एक गौरवगाथा रही है। स्वतन्त्रता आंदोलन के दौरान हमारे महापुरुषों ने अपने कालजयी प्रयासों से एक सक्षम एवं गौरवमयी भारत की तस्वीर प्रस्तुत की जो उनके सपनों का भारत था। इन्हीं में एक युगद्रष्टा सुभाषचन्द्र बोस ने भारत के स्वतन्त्रता आंदोलन में एक तरफ राजनीति क्रांतिकारी एवं प्रखर राजनीतिज्ञ की भूमिका अदा की, वहीं भविष्य के समर्थशाली भारत का सामाजिक–आर्थिक दृष्टि से उन्नत स्वरूप कैसा होना चाहिए, इसका पैमाना भी उन्होंने प्रस्तुत किया। भारत के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, राष्ट्रीय एकता, समाजवादी सामाजिक–आर्थिक ढाँचा, उद्योगीकरण, कृषि, शिक्षा, मानव संसाधन, स्त्रियों की क्षमता एवं भाषाई एकता जैसे भारत के महत्त्वपूर्ण सामाजिक पक्षों पर अपने विचार एवं लक्ष्यों को प्रस्तुत किया। जिन प्रमुख लक्ष्यों की प्राप्ति की सुभाषाचन्द्र बोस ने कल्पना की थी आज भी भारत इन्हीं आदर्शों को प्राप्त करने की दिशा में आगे बढ़ रहा है।

मूल शब्दः सुभाष चंद्र बोस, राष्ट्रवाद, सामाजिक, आर्थिक योगदान, राष्ट्र निर्माण, आधुनिकता

राष्ट्रनिर्माण में राष्ट्रीय चेतना

सुभाषचन्द्र बोस समाज निर्माण में राष्ट्रीय चेतना की महत्त्वपूर्ण भूमिका मानते थे। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि कोई भी समाज अपनी संस्कृति के आदर्शों एवं मूल्यों पर गर्व करके ही प्रगति पथ पर अग्रसर हो सकता है। उनका स्वयं का जीवन भी बाल्यावस्था से लेकर मृत्युपर्यंत उच्चतम राष्ट्र प्रेम, देशभक्ति कष्ट–सहिष्णुता एवं बलिदान की उच्च भावना से ओतप्रोत रहा। राष्ट्र समर्पण की यही भावना सुभाष में बाल्यकाल से ही विद्यमान थी, जैसे अपने आरंभिक दिनों में उन्होंने प्रोटेस्टेंट यूरोपियन स्कूल का विरोध किया जहाँ पर भारतीय छात्रों के साथ भेदभाव किया जाता था। [1] राष्ट्रभक्ति की यही भावना 1940 में प्रेसीडेन्सी जेल से बंगाल सरकार को लिखे गए उनके पत्र में भी देखी जा सकती है जो देशभक्ति की भावना का एक जीवंत दस्तावेज माना जा सकता है। इस पत्र में उन्होंने लिखा कि "किसी सिद्धांत की खातिर जीना और मरना संतोष का विषय है यदि व्यक्ति किसी सिद्धान्त की वेदी पर अपने प्राण निछावर कर देता है तो भावी पीढ़ियाँ उसके अधूरे काम को पूरा करेंगी। राष्ट्र निर्माण स्वतन्त्रता एवं गौरव के लिए व्यक्ति का प्राणोत्सर्ग आवश्यक होता है।" [2]

सुभाष बोस का यह भी मानना था कि किसी राष्ट्र के सामाजिक चरित्र की नींव त्याग और कष्ट सहिष्णुता की धरा पर ही टिकी होती है। कष्ट सहिष्णुता और आत्मोसर्ग राष्ट्र देवता की मूर्ति पर चढ़ाने वाले पूजा–पुष्प होते हैं। समाज के समग्र उत्थान के लिए राष्ट्रीयता की भावना एवं राष्ट्रीय एकता का होना अति आवश्यक है और राष्ट्रीय एकता की यह भावना अपनी संस्कृति में अटूट आस्था एवं विश्वास से आती है। स्वयं सुभाष की भी भारतीय संस्कृति में अगाध आस्था थी, उन पर भारत के धर्म एवं दर्शन की अमिट छाप थी यद्यपि उनकी पहचान एक क्रांतिकारी एवं राजनेता के रूप में है लेकिन धर्म एवं दर्शन का प्रमाण उनके जीवन के प्रत्येक पक्ष में देखा जा सकता है। ब्रह्मसूत्र, उपनिषद् एवं भगवतगीता का उन पर गहरा प्रभाव था। अपनी अध्यात्मिक पिपासा को शांत करने के लिए एक तरफ वह शंकराचार्य, बुद्ध, स्वामी विवेकानंद, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, श्री अरविन्द के भी निकट गए, वहीं तर्कशील प्राणी के रूप में पश्चिम के हीगेल, कांट, बर्गसा को भी समझा। [4]

आर्थिक विकास में समाजवाद

सुभाष बोस ने भारत की आर्थिक समस्याओं पर भी गहन चिंतन किया। गरीबी, अशिक्षा एवं बेरोजगारी को मुख्य समस्या माना, इसके लिए वह उत्पादन एवं वितरण की विषमता को उत्तरदायी मानते हैं। उनका मानना था कि भारत की आर्थिक–सामाजिक समस्याओं का समाधान समाजवादी आधार पर प्रभावशाली ढंग से खोजा जा सकता है। सुभाष पर पश्चिम के समाजवाद का व्यापक प्रभाव था। वह संसाधनों के असमान वितरण के सदैव विरोधी रहे किन्तु उनका तर्क यह भी था कि सभी को अपनी आवश्यकताओं एवं परिस्थितियों के अनुसार समाजवाद की कार्यप्रणाली में परिवर्तन लाना आवश्यक है क्योंकि किसी भी व्यवस्था को अपनाते समय भूगोल, इतिहास एवं संस्कृति की परिस्थितियों को अनदेखा नहीं कर सकते। ऐसा नहीं करने पर सफलता की संभावना कम ही रहती है। [5]

भारत भी इस बात के लिए स्वतन्त्र है कि वह अपनी परिस्थितियों एवं समस्याओं के आधार पर अपने लिए अपना समाजवादी मॉडल विकसित करे। यह भी हो सकता है कि अन्य देशों के अनुभव बहुत अच्छे न रहे हों परंतु भारतीय समाजवाद में कुछ नया, मौलिक एवं परिवर्तित होने पर संपूर्ण विश्व के लिए यह लाभदायक हो सकता है। उनका मानना था कि किसी भी सिद्धान्त या विचारधारा का अंधानुकरण नहीं किया जा सकता जैसा कि प्रथम मार्क्सवादी क्रांतिस्थल रूस में भी कार्ल मार्क्स का अंधानुकरण नहीं किया गया। [6]

स्वयं सुभाष बोस के विचारों पर मार्क्स एवं लेनिन की गहरी छाप थी, साथ ही वह स्वामी विवेकानन्द से भी प्रभावित थे। स्वामी विवेकानन्द ने दरिद्रनारायण की बात करते हुए भारत के विकास को अंतिम व्यक्ति के विकास के रूप में देखा तो सुभाष ने इन्हीं विचारों के आधार पर भारत के सर्ववर्ग उत्थान के लिए योजनाबद्ध विकास पर जोर दिया। [7] फरवरी 1938 में हरिपुरा कांग्रेस अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने भारत के औद्योगीकरण एवं योजनाबद्ध विकास की रूपरेखा प्रस्तुत की। उन्होंने कहा हमारी भविष्य की स्वतन्त्र सरकार को देश के पुनर्निर्माण के लिए सबसे पहले एक सर्वोन्मुखी योजना आयोग गठित करना होगा जो सर्ववर्ग उत्थान के लिए कार्य करे। [8]

आधुनिक उद्योग

सुभाष ने देश के विकास में औद्योगीकरण की महत्त्वपूर्ण भूमिका मानी परंतु उनका औद्योगीकरण समाजवादी विचारों पर आधारित था। वह संपूर्ण संसाधनों एवं उत्पादन का समाजवादी वितरण करने पर जोर देते हैं, इसके लिए वह भू सामंतीकरण, धन के केन्द्रीकरण एवं कृषि के ऋणजाल की आलोचना करते हैं। इन्हीं समस्याओं के निवारण हेतु उन्होंने जवाहरलाल नेहरु के नेतृत्व में एक योजना समिति का गठन करवाया। [9]

दूसरी तरफ बोस का इस बात पर भी बल रहा कि औद्योगीकरण का विकास देश के कुटीर उद्योगों के विनाश पर नहीं होना चाहिए। इसके लिए हमें यह निर्णय करना होगा कि कौन से उद्योग बड़े पैमाने पर विकसित किए जाएँ और कौन से उद्योग कुटीर उद्योग आधारित उत्पादन प्रणाली पर निर्भर हों। भारत की तत्कालीन आर्थिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उन्होंने सीमित संसाधनों पर आधारित बड़े उद्योग एवं कुटीर उद्योग दोनों पर बल दिया। [10]

अपने संपूर्ण जीवन में उन्होंने सदैव तर्कशीलता पर आधारित आधुनिकीकरण एवं उद्योगीकरण की वकालत की। इसी परिप्रेक्ष्य में उन्होंने भारत की एक प्रमुख समाजिक समस्या बेरोजगारी पर भी विचार व्यक्त किए। इस समस्या के समाधान के लिए वह उद्योगीकरण को महत्त्वपूर्ण उपकरण के रूप में देखा। उनका मानना था कि यदि देश के प्रत्येक नागरिक को भोजन उपलब्ध कराना है तो उद्योगीकरण पर बल देना होगा और जनसंख्या के एक बड़े हिस्से को खेती किसानी छोड़कर उद्योगों में रोजगार प्राप्त करना होगा। इससे न सिर्फ कृषि से अतिरिक्त श्रम का बोझ कम होगा बल्कि संगठित रोजगार से नागरिकों को भोजन, स्वास्थ्य एवं शिक्षा की मूलभूत आवश्यकताएँ भी पूरी हो पायेंगी। सुभाष बोस ने अपने सामाजिक–आर्थिक उत्थान कार्यक्रम में न सिर्फ बेहतर अवसरों की उपलब्धता पर जोर दिया बल्कि वह जीवन के उत्थान में सांस्कृतिक पक्षों के महत्त्व पर भी जोर देते हैं। उन्होंने व्यक्ति के मनोरंजन एवं जीवनशैली में उसकी संस्कृति से जुड़े पक्षों का शामिल होना भी आवश्यक माना। [11]

कृषि का महत्त्व

वह देश के सामाजिक–आर्थिक उत्थान में सिर्फ उद्योगों को ही महत्त्व नहीं देते हैं बल्कि एक कृषि प्रधान देश होने के नाते वह कृषि की स्थिति में सुधार की बात भी करते हैं। वह भारत की कृषिगत समस्याओं से अच्छी तरह से परिचित थे इसलिए उन्होंने कृषि के पिछड़ेपन में सुधार के लिए उपाय भी सुझाए। वह भारत में गहराई से व्याप्त जमींदारी प्रथा के विरोधी थे और इसके अंत को कृषि एवं कृषकों के उत्थान के रूप में देखते हैं। सभी के लिए समान काश्तकारी कृषि व्यवस्था की प्रथा को लागू करने पर बल देते हैं। लंबे काल के ब्रिटिश शोषण एवं जमींदारी व्यवस्था से किसान एक बड़े ऋण जाल में फंस चुका है इसलिए कृषि की तरक्की के लिए कृषि ऋणग्रस्तता का निवारण आवश्यक माना। साथ ही गांव के किसानों को सस्ती दर पर सरकारी कृषिऋण की योजना को भी जरूरी माना। [12] आगे स्वतन्त्र भारत में इसी तरह की ज्वलंत समस्यायें उभरकर सामने आई जिनके समाधान के लिए अभी तक प्रयास किए जा रहे हैं।

कृषि की उन्नति के लिए सुभाष ने आधुनिक वैज्ञानिक एवं अनुसंधान तकनीकी पर बल दिया। वह योजनाबद्ध तरीके से कृषि में तकनीकी समायोजन पर भी बात करते हैं। किसानों तक तकनीकी उपलब्धता एवं उनके प्रशिक्षण तक पर जोर देते हैं। इन सब बातों के वह स्वयं व्यक्तिगत रूप से प्रयासरत रहे। उन्होंने स्वयं पश्चिमी देशों की तकनीकी प्रगति को समझने के लिए डेनमार्क, हॉलैंड, रोमानिया एवं चेकोस्लोवाकिया का दौरा किया। वहाँ की आधुनिक कृषि–पद्धतियों को समझा और उन्हें अपने देश की कृषि व्यवस्था में भी लागू करने की वकालत की। [13]

युवाओं की भूमिका

सुभाष बोस किसी भी राष्ट्र की मानव संपदा के महत्त्व से भी अपरिचित नहीं थे, विशेषकर युवा पीढ़ी के सन्दर्भ में। स्वयं सुभाष युवा पीढ़ी के क्रांतिकारी नेता थे। उन्होंने कई देशों के युवा आंदोलनों का अध्ययन किया था और वह राष्ट्र उत्थान में युवाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका को स्वीकार करते हैं। उनका मानना था कि पुरातन पर नवीनता की भूमिका प्रमुख होनी चाहिए इसलिए युवाओं को आगे आकर राष्ट्र को नेतृत्व प्रदान करना होगा। उन्होंने चीन, तुर्की, रूस एवं जर्मनी में हुए युवा आंदोलनों के आधार पर यहाँ भी भारतीय युवाओं को देश के स्वतन्त्रता आन्दोलन में शामिल होने का आह्वान किया। [14]

युवाओं की असीम ऊर्जा को एक सही दिशा प्रदान करने के सन्दर्भ में भी उनका युवाओं के चरित्र निर्माण पर जोर था। वह पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा सदाचार, सत्कर्म एवं विवेक के संगम को महत्त्व देते हैं। युवाओं को प्रेरित करते हुए उन्होंने कहा हमारा मूल उद्देश्य अपने दैनिक कार्यों की पूर्ति ही नहीं है बल्कि अपने आत्मबल पौरुष में वृद्धि कर राष्ट्रप्रेम की तरफ जाना है। इसके लिए सद्चरित्रता पर आधारित जीवन के सर्वांगीण विकास पर बल देना होगा। उनकी यह प्रेरणा थी कि प्रत्येक युवा अपने जीवन में एक आदर्श आवश्यक रूप से रखे क्योंकि आदर्श के बिना जीवन में सही दिशा में प्रगति करना संभव नहीं है। क्योंकि इस संसार में प्रत्येक वस्तु नष्ट होने वाली है परंतु विचार, आदर्श एवं लक्ष्य नष्ट नहीं होते और यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पहुँचते रहते हैं। सही आदर्शों एवं लक्ष्यों से समाज की सकारात्मक प्रगति भी होती है। [15]

सुभाष बोस युवाओं की इस असीम ऊर्जा पर पूरा विश्वास करते थे, उनका मानना था कि आज पुरानी पीढ़ी के नेता लक्ष्यों की प्राप्ति में पूरी तरह से सफल नहीं हो रहे हैं, वहीं नवयुवक अपने लक्ष्यों के प्रति सचेत हो रहे हैं। इन्होंने समाज की नवरचना का दायित्व भी पूरा करना शुरु कर दिया। भारत के युवा पुराने राजनीतिज्ञों पर विश्वास नहीं करते, वह अपने सक्रिय प्रतिरोध से स्वतन्त्रता की ओर बढ़ रहा है। इसने स्वतन्त्रता के महत्त्व को समझ लिया है और अपने त्याग एवं बलिदानों की कीमत पर आजाद भारत की कामना कर रहा है। [16]

राष्ट्र निर्माण में छात्र

सुभाष बोस ने युवाशक्ति के रूप में विद्यार्थियों के लिए राष्ट्र निर्माण हेतु संदेश दिए। उन्हें छात्र असीमित ऊर्जा के पुंज नजर आते हैं क्योंकि वह स्वयं अपने विद्यार्थी जीवन में एक विद्रोही छात्र रहे थे, उन्हें अपने एक अंग्रेज अध्यापक के साथ मारपीट के कारण कॉलेज से बाहर निकाल दिया गया था। वह छात्र जीवन की कठिनाइयों को समझते थे। इस संबंध में वह कहते थे जिस समाज में छात्र सर्वांगीण विकास नहीं कर सकता उस समाज का भी पूर्ण विकास संभव नहीं है। [17]

साथ ही विद्यार्थियों को राजनीति में भागीदारी के लिए भी प्रेरित करते थे, वह संदेश देते हैं कि गुलाम जाति के पास राजनीति के अतिरिक्त कुछ नहीं होता है। पराधीन देश की प्रत्येक समस्या का हल राजनीतिक स्वतन्त्र ही है। विद्यार्थियों को राजनीति में भाग लेना इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि उन्हें राजनीतिक कार्यकर्ता के तौर पर प्रशिक्षित किया जा सकता है और इन्हीं विद्यार्थियों से राजनीतिक विचारक और महान राजनीतिज्ञ उत्पन्न होते हैं। [18]

समाज निर्माण एवं शिक्षा

सुभाष बोस ने शिक्षा को समाज निर्माण का वास्तविक अंग स्वीकार किया है, उन्हें भारत की परंपरागत शिक्षा प्रणाली में गहरी रुचि थी और उसके महत्त्व को प्रसारित करने का प्रयास भी किया परंतु वह पश्चिम की अंग्रेजी शिक्षा के भी विरोधी नहीं थे। उनका मानना था कि शिक्षा व्यवस्था का स्वरूप भारतीय

परिस्थितियों के अनुसार होना चाहिए। वह चाहते थे कि भारतीय बच्चों की शिक्षा की शुरुआत अंग्रेजी में न होकर अपनी मातृभाषा में होनी चाहिए और जब वह पूर्ण समर्थ एवं विवेकशील हो जाए तो उन्हें पश्चिमी शिक्षा प्रणाली के निकट ले जाया जाय। ऐसे में वह स्वयं निर्णय कर सकेंगे कि पूर्व एवं पश्चिमी शिक्षा प्रणाली में क्या बेहतर है। [19]

वह शिक्षा के उद्देश्य एवं उसकी सीमाओं को लेकर भी सजग थे। वह छात्रों को संपूर्ण जीवन अध्ययन करते रहने या फिर अध्ययन को जीवन का अंतिम लक्ष्य बनाने लेने को शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य नहीं मानते थे। शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को विवेकशील एवं चरित्रवान बनाना है। यदि कोई पढ़ा–लिखा व्यक्ति चरित्रवान नहीं है तो वह शिक्षित नहीं माना जा सकता और अनपढ़ व्यक्ति चारित्रिक रूप से ईमानदार एवं कर्तव्यनिष्ठ है तो वह महापंडित की श्रेणी में शामिल हो जाता है। सुभाष बोस सिर्फ किताबी अध्ययन को ही संपूर्ण शिक्षा नहीं मानते थे बल्कि वह व्यवसायिक शिक्षा के महत्त्व को भी स्वीकार करते हैं और विविध प्रकार का शिल्प प्रशिक्षण एवं उत्पादन कार्यों की शिक्षा का अनिवार्य हिस्सा मानते थे।

स्त्रियों का महत्त्व

सुभाष का मानना था कि भारतीय नारी जागरण भी भारतोत्थान के लिए अति आवश्यक है। वह नारी सामर्थ्य से पूर्ण परिचित थे और कहते थे ऐसा कोई कार्य नहीं है जो महिलाएँ कर न सके, ऐसा कोई बलिदान या कष्ट नहीं है जिसे सहन न कर सके। सुभाषचन्द्र बोस स्त्रियों एवं पुरुषों के समान अधिकार के समर्थक थे। दोनों को समान सामर्थ्य का मानते थे इसलिए उन्हेंने आजाद हिंद फौज के गठन के दौरान के महिला बटालियन भी तैयार की। इसका नाम झांसी की रानी लक्ष्मी बाई के नाम पर रखा। इसके उद्घाटन में उन्होंने झाँसी की रानी के अदम्य साहस एवं शौर्य की प्रशंसा की थी और सभी महिलाओं की रानी की तरह शौर्य एवं बलिदान की प्रतिमूर्ति बनने के लिए प्रेरित किया था। [20]

राष्ट्रीय एकता में राष्ट्रभाषा

भारत में राष्ट्र भाषा को लेकर सदैव से ही भाषा विवाद रहा है, एक राष्ट्र भाषा को लेकर कभी एकमत नहीं नजर आया। ब्रिटिश काल में अंग्रेजी राजभाषा के तौर पर स्थापित रही परंतु स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान ही भारतीय नेताओं ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानने की बात पर जोर देना शुरु कर दिया था। विशेषकर स्वामी दयानंद सरस्वती और महात्मा गांधी ने हिन्दी के पक्ष में वकालत की। गांधी जी का मानना था कि अंग्रेजी एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है। इसे व्यापार एवं कूटनीति की भाषा के तौर पर स्वीकार किया जाता है इसलिए अंग्रेजी का ज्ञान भारतीयों के लिए आवश्यक है परंतु इसे मातृभाषा और राष्ट्रभाषा के तौर पर स्थापित नहीं किया जा सकता। इसके स्थान पर हिन्दी को राष्ट्र भाषा का स्थान दिया जाना चाहिए।

सुभाषचन्द्र भी इस विचार के कट्टर समर्थक थे, उन्होंने कलकत्ते में आयोजित एक सम्मेलन में कहा कि हिंदी को राष्ट्रभाषा का स्थान मिलना चाहिए। उन्होंने दयानंद सरस्वती एवं गांधी जी के हिन्दी समर्थन के प्रयासों की प्रशंसा की। उनका यह भी मानना था कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा के तौर पर स्वीकार किये जाने का यह अर्थ नहीं है कि सभी क्षेत्रों की अपनी भाषाओं की उपेक्षा करना। हिन्दी के साथ–साथ क्षेत्रीय भाषाओं का भी महत्त्व बना रहना चाहिए। राष्ट्रभाषा एवं क्षेत्रीय भाषा का परस्पर समन्वय भारत की भाषा संबंधी समस्या के समाधान में सहायक साबित होगी। [21]

निष्कर्षतः हम देख सकते हैं कि सुभाषचन्द्र बोस हमारे राष्ट्र निर्माताओं की अग्रिम पंक्ति की अमूल्य निधि थे। वह न सिर्फ राष्ट्रीय आंदोलन में क्रांतिकारी एवं राजनीति के रूप में मील का पत्थर बने बल्कि वह भारत के सर्वांगीण विकास के लिए प्रगतिशील समाज निर्माण के भविष्यदृष्टा भी बने। उन्होंने भारत के सभी वर्गों के उत्थान की कल्पना की और एक सक्षम एवं समर्थशाली भारत के लिए इसे आवश्यक भी माना। उन्होंने समाज के सभी भेदभावों को अस्वीकार कर एक समन्वयवादी प्रगतिशील भारतीय समाज का ढाँचा अपने विचारों एवं आदर्शों में व्यक्त किया। वह भारतीय संस्कृति के पुरजोर समर्थक थे परंतु रूढ़िवादिता एवं जड़ता के उतने ही विरोधी भी थे। वह पश्चिम के विचारों को भी महत्त्व देते हैं परंतु उसके अंधानुकरण का विरोध करते हें। वह इसे भारतीय समाज एवं संस्कृति की अनुकूलता तक ही ग्रहण करने की बात करते हैं। आज हम सभी सुभाषचन्द्र बोस के इसी सर्वोदयी एवं अन्त्योदयी भारत समाज के उत्थान की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं।

सन्दर्भ सूची

1. रॉय, डॉ. आर.सी. सोशल, इकोनॉमिक एण्ड पालिटिकल फिलोसफी ऑफ नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, ओडिसाः ओडिसा रिव्यू, पृ. 2004, 5–6.
2. बोस, एस.के. सुभाष चन्द्र बोस, क्रोरोड्स, पृ. 1981, 380–1.
3. गॉर्डन, लियोनार्ड, अ., ब्रोदर अगेंस्ट द राज, बायोग्राफी ऑफ सरत एण्ड सुभाषचन्द्र बोस, पृ. 34–35.
4. वही, पृ. 34–35.
5. ग्रोवर, वीरेन्द्र. सुभाष चन्द्र बोस, नई दिल्लीः दीप एण्ड दीप, पृ. 1980, 286–87.
6. वही, पृ. 286–88.
7. गॉर्डन, लियोनार्ड, बायोग्राफी आफ सरत एण्ड सुभाष चन्द्र बोस, पृ. 355–56.
8. रॉय, डॉ. आर.सी. सोशल, इकोनॉमिक एण्ड पालिटिकल फिलोसफी ऑफ नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, 2004, पृ. 5–6.
9. वही, पृ. 5–6.
10. गुप्त, विश्वप्रकाश और गुप्त, मोहिनी. महात्मा गाँधी – व्यक्ति और विचार, नई दिल्लीः राधा पब्लिकेशन, 1996, पृ. 170–72.
11. वही, पृ. 170–72.
12. ग्रोवर, वीरेन्द्र. सुभाष चन्द्र बोस, नई दिल्लीः दीप एण्ड दीप, पृ. 1980, 286–87.
13. वही, पृ. 286–87.
14. वही, पृ. 197–98.
15. वही, पृ. 198–99.
16. वही, पृ. 260–62.
17. वही, पृ. 261–62.
18. वही, पृ. 198, 261–62.
19. गुप्त, विश्वप्रकाश और गुप्त, मोहिनी. सुभाष चन्द्र बोस – व्यक्ति एवं विचार, नई दिल्लीः राधा पब्लिकेशन, पृ. 1997, 220–224.
20. ग्रोवर, वीरेन्द्र. सुभाष चन्द्र बोस, पृ. 1980, 367–70.
21. गुप्त, विश्वप्रकाश और गुप्त, मोहिनी, सुभाष चन्द्र बोस – व्यक्ति एवं विचार, पृ. 1997, 224–25.